कैसे करें अनुशासित?

रजनी द्विवेदी

परिचय

स्कूल की बात हो, कक्षा की बात हो या बच्चों की बात हो अनुशासन का जिक्र आ ही जाता है। बच्चों को स्कूल भेजने का एक उद्देश्य यह भी होता है कि बच्चे अनुशासित होना सीखेंगे। समाज के विभिन्न कार्यों में उनकी भूमिका के बारे में सोचते हुए उन्हें किसी-न-किसी तरह स्कूल में अनुशासन सिखाने का प्रयास किया ही जाएगा व किसी हद तक यह सिखा ही दिया जाएगा। यहाँ यह तर्क नहीं दिया जा रहा कि किसी भी तरह का कार्य ढंग व कार्य पद्धति ही नहीं होनी चाहिए, पर उसका स्वरूप, ढंग व मात्रा सभी विश्लेषण की माँग करते हैं। वैसे तो कुछ हद तक हर स्कूल की अनुशासन की अपनी समझ होती है लेकिन जो सबसे प्रचलित और अधिकांश स्कूलों में मौजूद समझ है उसके अनुसार अनुशासन में रहना और दण्ड दिया जाना दो अलग-अलग बातें नहीं बल्कि लगभग एक ही बात है। इनका अलग-अलग कोई अस्तित्व नहीं है। अतः दण्ड के सिद्धान्त पर तो कोई मतभेद नहीं है किन्तु इसकी मात्रा व क़िस्म के बारे में कभी-कभी चिन्ता व्यक्त की जाती है। शिक्षक ही नहीं बल्कि अधिकांश माता-पिता भी यही मानते हैं कि अनुशासन बच्चे मार-पिटाई अथवा डाँट-फटकार से ही सीख सकते हैं। हालाँकि कुछेक परिवारों के माता-पिता को बच्चों की पिटाई का विचार ठीक नहीं लगता पर वे भी बच्चों को अनुशासित करने के लिए पुरस्कार या लालच की भावना में विश्वास करते हैं। लेकिन सवाल यह है कि क्या अनुशासन को समझने का कोई और ढंग भी हो सकता है जो मूलतः इस सबसे अलग हो। और दूसरा यह कि अनुशासन में लाने व बाँधकर सिखाने के ये ही कुछ दो-चार हथकण्डे हैं अथवा और भी हैं और आख़िर में यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि क्या ऐसा भी हो सकता है कि ये बात कुछ और ही है। इस लेख में मैं आपसे एक स्कूल में बच्चों के साथ कार्य करने का अपना अनुभव साझा करते हुए स्कूल व कक्षा के सन्दर्भ में अनुशासन पर बात करूँगी।

कक्षा और बच्चे

इस पड़ताल की शुरुआत एक अन्य प्रयास के सन्दर्भ में उभरी। यह प्रयास इस बात को पता करने का था कि बच्चे नई बनी पाठ्यपुस्तकों से कैसे अन्तःक्रिया करते हैं। ये पाठ्यपुस्तकें उनके लिए कितनी उपयुक्त हैं व कुछ ऐसे ही और सवाल। इन सवालों को लेकर मैंने और मेरे साथियों ने कुछ कक्षाओं के साथ काम करने का निश्चय किया। प्रधान शिक्षक, शिक्षक इत्यादि सभी से बातचीत करने के बाद हम सभी ने अपने-अपने लिए स्कूल और फिर उस स्कूल में कक्षाओं का चयन किया। मैंने भी एक स्कूल और उस स्कूल में एक कक्षा, कक्षा तीन को अपने कार्य के लिए चुना। हमारी योजना के अनुसार हमें पहले तीन दिन कक्षा का अवलोकन करना था ताकि हम कक्षा को व उसमें बच्चों को समझ सकें। और साथ ही यह भी देखें कि पुस्तकों को लेकर बच्चों के साथ क्या काम करेंगे और कैसे? अवलोकन के तीनों दिन ठीक-ठाक गुजरे। शायद इसलिए कि मुझे कुछ ख़ास करने की ज़रूरत नहीं थी। शिक्षक पढ़ा रहे थे और मुझे अवलोकन कर रिपोर्ट लिखनी थी। चौथे दिन शिक्षक ने कक्षा मुझे सौंप दी। उनको किसी प्रशिक्षण में जाना था।

बच्चों को शायद पता चल गया था कि आज उनके शिक्षक नहीं हैं, और आज से मैं ही उन्हें पढ़ाऊँगी। दूर से ही मुझे पता चल गया कि कक्षा में बहुत शोरगुल हो रहा था। बच्चे खेल रहे थे। यहाँ से वहाँ भाग रहे थे। एक-दूसरे से दरियों के लिए छीना-झपटी कर रहे थे (क्योंकि दरियों की कमी थी)। शोरगुल की वज़ह से उनको एक-दूसरे से चीख-चीखकर बात करनी पड़ रही थी, और जब मैंने कक्षा में प्रवेश किया तो मुझे भी बच्चों को चीख-चीखकर निर्देश देने पड़े। "बैठ जाओ, बैठ जाओ, शोर नहीं, कृपया बैठ जाओ।" कुछ शान्ति हुई। मैंने सोचा अब काम शुरू करते हैं। बच्चों को अपनी हिन्दी की पुस्तक निकालने को कहा। जो पाठ मैंने चुना था उसे निकालने के लिए कहा। पाठ की तस्वीर दिखाई। कुछ बच्चे निकाल पाए। कुछ अन्य की मैंने मदद करनी शुरू की। बमुश्किल दो मिनट ही हुए होंगे कि आवाज़ आई, "मैडम, क्या मैं पानी पी आऊँ?" मैंने भी "हाँ" कह दिया। कुछ बोलने वाली थी कि दूसरी आवाज़ सुनाई दी, "मैं भी जाऊँ?" हर दूसरे मिनट कोई-न-कोई बच्चा मुझसे कभी पानी पीने तो कभी टॉयलेट जाने की अनुमति माँग रहा था। और तब तो हद हो गई जब एक घण्टा होने पर छोटी छुट्टी की घण्टी बजी और कक्षा में से बच्चे बाहर की ओर ऐसे निकले जैसे मुम्बई की किसी खचाखच भरी रेल से लोग बाहर निकलते हैं। बड़ी धक्का-मुक्की थी, शोर था और जब वापस आने की घण्टी लगी तो बहुत से बच्चे नहीं आए। तब मुझे ही कुछ बच्चों को भेजकर उनको बुलाना पड़ा। मुझे लगा आज पहला दिन है शायद इसलिए ऐसा हो रहा है। लेकिन दूसरे दिन, तीसरे दिन भी ऐसा

ही हुआ। मैं यह समझ ही नहीं पा रही थी कि कक्षा में हो क्या रहा है? मैं थोड़ी चिन्तित भी थी कि क्योंकि कुछ बच्चे ज़रूर मेरी बात सुन लेते थे लेकिन पूरी कक्षा के साथ कुछ ख़ास काम मैं नहीं कर पा रही थी। बड़ी उलझन थी। बच्चों को मारना तो अनुचित है, अतः यह तो नहीं किया जा सकता। फिर क्या किया जाए? सोचा उनसे कम-से-कम अपनी परेशानी तो साझा करूँ। अतः मैंने उनसे कहा कि देखो अगर तुम ऐसे ही शोर मचाते रहोगे तो मैं पढ़ा ही नहीं सकती, क्योंकि कौन क्या बोल रहा है कुछ समझ ही नहीं आता। ज़ोर-ज़ोर से बोलना पड़ता है और इससे मेरा गला भी दर्द करने लगता है। इसलिए शोर नहीं, बात करने की मनाही नहीं है लेकिन ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर बात करना बिलकुल मना है। और बहुत ज़रूरी हो, कुछ पूछना है, बताना है तभी बात करो बाक़ी नहीं। दूसरी बात, प्रार्थना के बाद सब कक्षा में पानी पीकर, टॉयलेट जाकर आएँगे और फिर छोटी छुट्टी से पहले कोई छुट्टी नहीं माँगेगा। (चूँकि कक्षा में कोई घड़ी नहीं थी इसलिए मैंने बोर्ड पर ही एक घड़ी बना दी थी। कक्षा शुरू होती तो काँटा 10:15 पर होता। मैंने बच्चों से कह दिया था कि जब 11 बजेंगे तब मैं भी काँटों को आगे बढ़ाकर घड़ी में 11 बजा दूँगी और तब वे बाहर जा सकते हैं।) दरियों की खींचतान, बैग फेंकना, एक-दूसरे को मारना सब बन्द। दरी बिछाओ और एक-एक करके सब बैठो, ऐसे तो जो दरियाँ हैं वे भी फट जाएँगी।

धीरे-धीरे मुझे लगने लगा कि बच्चों को कुछ बात समझ आई है। अब शोर थोड़ा कम हुआ और बार-बार बाहर जाने के लिए अनुमति माँगना भी। कक्षा में कुछ काम हुआ। यद्यपि कभी-कभार बच्चे भूल भी जाते थे और ज़ोर-ज़ोर से बात करने लगते थे, या छुट्टी भी माँगने आ जाते थे लेकिन लग रहा था कि वे बात समझ रहे हैं। स्थिति पहले से बेहतर थी यह जाहिर था। हम कुछ काम भी कर पा रहे थे। लेकिन हर दो-तीन दिन में कुछ-न-कुछ ऐसा नया हो ही जाता था कि मुझे लगता इस बारे में क्या किया जाए? जैसे, कक्षा में ही खाना लेकिन खाना खाने के बाद कक्षा की सफ़ाई न करना, जूतों को इधर-उधर फेंक देना, कक्षा के फर्नीचर को ज़ोर-ज़ोर से इधर-उधर खिसकाना, उन पर लिखना, दरियों को ठीक से न बिछाना, कक्षा में कॉपी चैक करवाने के लिए, कुछ पूछने के लिए, अथवा दिया गया कार्य करने के लिए अपनी बारी का इन्तज़ार न करना, कभी-कभार एक-दूसरे को मारना-पीटना, कक्षा में समय पर न आना आदि-आदि...। इन सभी बातों से मुझे लगता था कि बच्चों को कुछ नियमों को समझने की ज़रूरत है ताकि न केवल कक्षा का कामकाज सुचारू रूप से चल सके बल्कि बच्चे यह भी समझें कि यह कक्षा, यह स्कूल जिसमें वे पढ़ रहे हैं उनके अपने हैं और इनका ध्यान रखना उनकी भी ज़िम्मेदारी है। इन सबके सन्दर्भ में बच्चे स्वयं समझें। इस दिशा में कुछ काम किए गए जैसे, बच्चों के साथ इन मुद्दों पर बात करना। क्या ऐसा करना ठीक है, नहीं है, क्यों नहीं है, उन्हें अपनी परेशानी, सीमाएँ बताना, उनकी परेशानियों, अपेक्षाओं को सुनना-समझना। उनके साथ मिल-जुलकर काम करना जैसे मिलकर कक्षा की सफ़ाई करना, दरियाँ बिछाना, जूतों को जमाना आदि-आदि। धीरे-धीरे बहुत-सी चीज़ें ठीक हुईं। यह नहीं था कि कक्षा में बच्चों की बातचीत बन्द हो गई, या उन्होंने कॉपी चैक करवाना बन्द कर दिया या एक-दूसरे से लड़ाई होने पर प्रतिक्रिया देना बन्द कर दिया। बस इन चीज़ों को करने के तरीक़ों में कुछ बदलाव हुआ जिससे कक्षा का कामकाज सुचारू रूप से चलने लगा।

एक बात और इस सन्दर्भ में रेखांकित करना चाहूँगी। इन शुरुआती दिनों में, जब मैं कक्षा को बिलकुल नहीं सम्भाल पा रही थी, कुछ और बातें भी हुईं। कक्षा के कुछ बच्चों ने कहा, "आप सबसे कहो कि आप इनकी शिकायत फलाँ गुरुजी से कर दोगे। देखना, सब चुप हो जाएँगे।" कक्षा पाँच के एक-दो बच्चे मेरी कक्षा में आए और उन्होंने मुझसे कहा, "मैडम आपको हमारी मदद चाहिए तो कहो, एक बार में इन सबको चुप करा देंगे। आपको नहीं आता चुप कराना, हमें आता है।" दूसरे शब्दों में, आप यदि इन बच्चों को नहीं मारना चाहतीं तो ठीक है, हमें मारने की अनुमति दे दीजिए। ये एकदम ठीक हो जाएँगे। यानी एक ही तरीक़ा है बच्चों को तौर-तरीक़े सिखाने यानी अनुशासित करने का – दो-चार डण्डे लगाइए और बस। उन बच्चों ने भी स्कूल में पाँच साल पढ़ते हुए यह समझ लिया था कि स्कूल के तौर-तरीक़े यानी कि अनुशासन, या कहें कि नियमों का पालन करना, निर्देशों का पालना करना डण्डे की मार से ही समझ आ सकता है और कोई तरीक़ा नहीं है। पुनः बच्चों की ही बात नहीं अधिकांश लोग चाहे माता-पिता हों या शिक्षक सभी यही मानते हैं कि बिना दण्ड के बच्चे अनुशासन नहीं सीख सकते अथवा नियम और तौर-तरीक़े, उपयुक्त व्यवहार करना नहीं सीख सकते।

अनुशासन की समझ

इस सन्दर्भ में एक बिन्दु तो यह है कि 3-4 साल की उम्र तक आते-आते बच्चे बहुत कुछ सीख जाते हैं। यह भी कि बच्चों में सीखने की असीम क्षमता होती है और वे विभिन्न चीज़ों को ऐसे सोख लेते हैं जैसे कि एक स्पंज पानी को। भाषा के सन्दर्भ में यह बात अक्सर कही जाती है लेकिन यह भाषा ही नहीं बल्कि आदतों, दूसरों के साथ अन्तःक्रिया करने के तरीक़ों यथा बातचीत, उनकी बात को सुनना, उसकी प्रतिक्रिया कैसे देनी है, देनी है या नहीं, किस स्थिति में कैसे व्यवहार करना है यह सब भी सीख लेते हैं और दिन-ब-दिन इस सन्दर्भ में अपनी समझ को बढ़ाते भी रहते हैं। और यह सब वे हम वयस्कों के साथ रहते हुए, हमसे बातचीत करते हुए ही सीखते हैं। अतः बच्चे क्या सीखते हैं और कैसे सीखते हैं यह बहुत कुछ हमारे

ऊपर भी निर्भर करता है। यदि हम उन्हें निर्देश ही देते रहें जैसा कि घरों में और स्कूलों में आम तौर पर होता है, यह नहीं करो, यह ऐसे करो, चलो चुपचाप बैठ जाओ, मिट्टी से नहीं खेलो, कतार में खड़े हो जाओ, चुपचाप बिना कोई हरकत करे प्रार्थना करो, बातें नहीं करो, लाइन बनाकर चलो वग़ैरह-वग़ैरह। कभी भी बच्चों से इस बारे में बात नहीं की जाती कि ये सारे निर्देश क्यों हैं उनके लिए? मुझे यह भी महसूस हुआ कि बच्चों को हम कैसे देखते हैं, उनके बारे में, उनकी क्षमताओं के बारे में हमारा क्या दृष्टिकोण है इसका अनुशासन क्या होगा, कैसे होगा इस पर फर्क़ पड़ता है – बच्चों को बच्चे समझना यानी ये तो अभी छोटे हैं, इन्हें कुछ समझ नहीं आता, या इस बारे में इनसे बात नहीं की जा सकती क्योंकि इन्हें तो समझ ही नहीं आएगी ये सब ग़लत विश्वास हैं।

दूसरा बिन्दु यह है कि वर्षों पहले (आज से 90 साल पहले) गाँधीजी ने नई तालीम की पाठ्यचर्या में स्व-अनुशासन के बारे में बहुत कुछ कहा और लिखा भी। उसमें सबसे मुख्य बात यही थी कि शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य यह है कि बच्चे स्व-अनुशासन सीखें, और यह कि अनुशासन बच्चों पर थोपा नहीं जा सकता, जैसा कि शर्मा अपने पर्चे में कहती हैं ," यह (नई तालीम) ज्ञान और कर्म का एकीकरण है जिसके परिणामस्वरूप आनन्द मिलता है। यह अहिंसा की शिक्षा है। यह स्वतंत्रता और आपसी सहयोग पर आधारित है। और उद्देश्य भय से मुक्त होना है। यह शरीर की ज़रूरतों की आत्मनिर्भरता और स्वतंत्र और आलोचनात्मक सोच और ज्ञान के लिए है। यह मानता है कि शिक्षा से विद्यार्थियों में सामाजिक चेतना का विकास होना चाहिए, साथ ही दूसरों के सहयोग से काम करने की प्रवृत्ति और आदतों का विकास होना चाहिए। नई तालीम का सामाजिक सिद्धान्त यह है कि सभी मनुष्यों का समान रूप से सम्मान किया जाना चाहिए और शिक्षा को जीवन से घनिष्ठ और सामंजस्यपूर्ण रूप से जोड़ा जाना चाहिए। शिक्षा का लक्ष्य आत्म-अनुशासन प्राप्त करना और चरित्र का निर्माण करना है और व्यक्ति को बाहरी रूप से थोपे गए अनुशासन पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। नई तालीम सीखने की एक सतत प्रक्रिया है।'' (शर्मा, 2017)

बच्चे अनुशासन तब सीखेंगे जब उन्हें भी ज़िम्मेदारियाँ दी जाएँगी। उनको अपनी बात कहने की, जो कार्य वे करना चाहते हैं उसकी स्वतंत्रता दी जाएगी, उनकी बात को समझा जाएगा, उसको तवज्जो दी जाएगी, तभी उन्हें यह महसूस होगा कि कक्षा में, स्कूल में, समाज में उनकी भी कोई भूमिका है। और यह सब कुछ अगर शिक्षक के साथ हो, उसके व उसको सहयोग के लिए हो, तो उसका वास्तविक गहरा असर होगा। स्कूल बढ़िया चले इसमें बच्चों की भूमिका चूँकि परिस्थिति अनुरूप बदलती रहती है, अतः उन्हें यह एहसास भी स्वतः होता रहता है कि कब, किससे, किस तरह का व्यवहार करना उचित है व किस तरह का नहीं। यह उन्हें अपनी उपयोगिता व महत्त्व का एहसास दिलाने में भी मददगार होती है। इन विभिन्न भूमिकाओं में रहना उन्हें विभिन्न परिस्थितियों के अलग-अलग पहलुओं को ध्यान में रखते हुए अपने-आप से लगातार संवाद करने की माँग करता है, ऐसा संवाद जिसमें उन्हें श्रोता और वक्ता दोनों की ही भूमिका निभानी है और निर्णय भी लेना है। और जैसा कि विनोबा भावे बुनियादी तालीम के बारे में कहते हैं, "शिक्षा के लिए हमारी योजना अनुशासन की योजना है, इसका मुख्य स्रोत है, अर्थात् आत्म-भोग नहीं बल्कि आत्म-नियंत्रण है। हमारा मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि हमारे बच्चे अपने शुरुआती वर्षों से अपनी इन्द्रियों, मन और बुद्धि को नियंत्रण में रखने के लिए सीखें। उनकी वाणी में सत्यता का भाव होना चाहिए; हमें उन्हें अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए, और उनकी फिटनेस के लिए शब्दों का चयन करना चाहिए, न कि फैशन के लिए, मैं आपका ध्यान फिटनेस और फैशन के बीच के अन्तर की ओर आकर्षित करना चाहूँगा। मुझे एक और बात कहनी है कि अगर हमें अनुशासन और आत्म-नियंत्रण की भावना पैदा करने के इस कार्य को अंजाम देना है, तो बुनियादी शिक्षा जहाँ तक हो सके सौंपी जानी चाहिए।"

आज बुनियादी शिक्षा की बात तो होती है लेकिन ऐसे स्कूलों को उँगलियों पर गिना जा सकता है जहाँ बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा दी जाती है। यदि हम चाहते हैं कि बच्चे अनुशासन को समझें, सीखें उसके लिए मौजूदा पाठ्यचर्या में बुनियादी शिक्षा के नियमों को सम्मिलित करना और ये कक्षा में, स्कूल में कैसे क्रियान्वित हो पाएँगे इस दिशा में क़दम उठाने की सख़्त ज़रूरत है।

सारांश

यदि हम बच्चों को एक वयस्क इंसान की तरह समझेंगे तो हमारे उनके साथ अन्तःक्रिया करने के तरीक़े स्वयमेव ही बदल जाएँगे। तब हम अपनी बात, अपनी परेशानियाँ भी उनसे साझा करेंगे, उनकी बात को तवज्जो देंगे, उनकी बात को सुनेंगे, उन्हें कुछ करने, न करने के लिए सिर्फ निर्देश ही नहीं देते रहेंगे बल्कि उनके साथ बातचीत करेंगे कि क्यों हम ऐसा करना चाहते हैं, और यदि हम यह काम नहीं करें तो क्या परिणाम हो सकते हैं। और ऐसा करने के पीछे यह समझ है कि बच्चे भी सम्माननीय हैं, वे भी चीज़ों को देखते-समझते हैं और निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं। जब बच्चों को महसूस होता है कि उनकी भी कक्षा में, स्कूल में, समाज में कोई भूमिका है, जो कि अवश्य है तब वे भी अपने-आप ही अपने-आप को ज़िम्मेदार महसूस करने लगते हैं और धीरे-धीरे अपनी ज़िम्मेदारियों को समझने भी लगते हैं और उनको निभाने के लिए उनको क्या-

क्या करना होगा यह भी सीखते हैं व इस ज़िम्मेदारी को निभाते भी हैं। और नई तालीम के विचार में भी यह साफ़ परिलक्षित होता है कि बच्चे अपनी ज़िम्मेदारियों को शिक्षा की शुरुआत से ही समझें। हम बच्चों से यह अपेक्षा तो रखते हैं कि वे आगे चलकर समाज में योगदान देंगे लेकिन जब कक्षा व स्कूल में हम उनके साथ काम करते हैं तो हम इन अपेक्षाओं को भूल जाते हैं। आखिर कक्षा व स्कूल, समाज के ही तो हिस्से हैं।

References:

1 Drawing Inspiration from Gandhi's Nai Talim: Anand Niketan, Wardha Part II – Retrieved from http://www.theeducationist.info/drawing-inspiration-gandhis-nai-talim-anand-niketan-wardha-part-ii 16/08/17 11:54 pm

2 Nai Taleem and More - Vinoba's Thoughts on Education - Retrieved from http://www.adharshilalearningcentre.org /2016/06/ nai-taleem-and-morevinobas-thoughts-on.html 08/17 11:56 pm

3 Dewan H.K. Capability of the Child. Learning Curve, October, 2010. Azim Premji Foundation, Bengaluru.

रजनी द्विवेदी वर्तमान में शिक्षकों और शिक्षक-शिक्षकों के लिए क्षमता निर्माण के प्रयासों, विकास और उसके लिए सामग्री के सम्पादन एवं अनुवाद के काम में व्यस्त हैं। उन्होंने कॉलेज ऑफ़ होम साइंस, उदयपुर से बाल विकास में और प्राथमिक शिक्षा में TISS, मुम्बई से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। उनसे ritudwi@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।